Aapni Duniya, 9th November 2009

चौथी दुनिया दिल्ली, 9 नवंबर–15 नवंबर 2009

संभव है कि देश के अलग-अलग हिस्सों में इन्हें अलग नामों से जाना जाता हो, लेकिन इन सभी जगहों पर एक समय ये हमारी कृषि, हमारी रसोई और हमारे सांस्कृतिक अनुष्ठानों का अभिन्न हिस्सा रहे हैं.

मोटे अनाज अपनाएं

खेती से लेकर खाने तक

कांची कोहली

अब इसे अजीब बात ही कहेंगे कि व्यवसायिक नज़रिए से यह स्वीकार कर लिया गया है कि मिलेट्स बेहद स्वस्थ व पौष्टिक आहार हैं और शहरी उपभोक्ताओं को इन्हें ऊंची क़ीमत पर बेचा जा सकता है. वर्षों तक उपेक्षित रहने के बाद मिलेट्स को कृषि अनुसंधान संस्थानों में जगह मिल पा रही है और बड़ी निजी कंपनियां भी इसे अपने एजेंडे में शामिल कर रही हैं

कृषि विज्ञान की पुस्तकों में इसका उल्लेख मोटे अनाज के रूप में किया गया है. हिंदीभाषी लोग भी आम बोलचाल में इसे मोटे अनाज के ही नाम से पुकारते हैं. यह नामकरण मिलेट्स के लिए धब्बा बन चुका है और वर्षों की मशक़्क़त के बाद भी इससे उबरा नहीं जा सका है. इसके विपरीत जैव विविधता वाले किसान, जो मिलेट्स की खेती करते हैं, उनके लिए यह अद्भुत अन्न है या फिर कह सकते हैं कि यह सही मायने में फ़सल है. संभव है, आप में से कई मेरा इशारा समझ रहे होंगे कि मैं क्या कहना चाह रही हूं. लेकिन, मुमकिन है कि आप में से कई उस छोटी सी लड़की की तरह ही हैरान होंगे, जो एक बीज प्रदर्शनी में रंग-बिरंगे बीजों को देखकर अचरज में डूबी थी. उसने अपनी मां से पूछा कि ये कौन से मिलेट्स हैं. यह एक ऐसा सवाल था, जिसका जवाब देना वह सिर्फ़ टाल ही सकती थी.

हम भारतीय कृषि की परंपरा से दूर होते जा रहे हैं. जैव विविधतापूर्ण मिलेट्स आधारित खेती भारतीय परंपरा के मूल में शामिल रही है. वर्ष 1970 के बाद से ही जबसे हरित क्रांति का सपना पूरा हुआ, भारतीय कृषि वैज्ञानिकों और सरकार द्वारा प्रायोजित योजनाओं में गेहूं व चावल को प्रमुखता मिलने लगी. इसके बाद की पूरी पीढ़ी ऐसी है, जिसने अपने घरों और बाज़ारों यहां तक कि अपनी पाठ्य पुस्तकों में भी मिलेट्स को नहीं देखा है. आज भी ये खाद्यान्न देश के कई राज्यों में छोटे पैमाने पर पैदा किए जा रहे हैं, जहां लोग इसे ख़ास स्थानीय नामों से जानते हैं.

आख़िर ये मिलेट्स है क्या चीज़, जिसका मैं बार-बार ज़िक्र कर रही हूं. मिलेट्स के अंतर्गत हम जिन खाद्यान्नों को शामिल करते हैं, उनमें ज्वार, बाजरा, मडुआ, रागी, कंगनी, सावन, कोदो या कुटकी प्रमुख हैं. संभव है कि देश के अलग-अलग हिस्सों में इन्हें अलग नामों से जाना जाता हो, लेकिन इन सभी जगहों पर एक समय ये हमारी कृषि, हमारी रसोई और हमारे सांस्कृतिक अनुष्ठानों का अभिन्न हिस्सा रहे हैं. वे जो मिलेट्स को एक अवधारणा के तौर पर समझते हैं, न कि सिर्फ़ फ़सल के तौर पर, स्पष्ट तौर पर यह स्वीकार करेंगे कि आज भारतीय कृषि किसानों की आत्महत्या और प्रदूषण के कारण मिट्टी के क्षरण जैसी समस्याओं से जूझ रही है. मोटे अनाज भविष्य में हमें इस समस्या से उबार सकते हैं. ऐसा दावे के साथ इसलिए कहा जा सकता है, क्योंकि सालों साल तक मिलेट्स हर समय और हर परिस्थितियों में मनुष्य के लिए भोजन, जल, स्वास्थ्य, पोषण और जीवन की सुरक्षा की गारंटी रहे हैं. ऐसा कैसे हुआ? मिलेट्स की पैदावार ख़राब मिट्टी में भी ली जा सकती है. कम पानी, यहां तक कि बग़ैर पानी के भी इसे उगाया जा सकता है. जलवायु परिवर्तन के साथ भी यह सामंजस्य स्थापित कर लेता है. मिलेट्स के साथ दिलचस्प तथ्य यह है कि इसकी खेती में उर्वरक की ज़रूरत नहीं पड़ती. अन्य बाहरी चीज़ों की ज़रूरत भी कम ही पड़ती है. देश के कई हिस्सों में जहां वर्षा काफी कम होती है, वहां सिंचाई पर निर्भर रहे बग़ैर ही मिलेट्स अपने अस्तित्व की रक्षा कर लेते हैं.

देश के लघु एवं सीमांत किसान हमेशा से इसकी खेती जैव विविधता वाली कृषि भूमि पर करते हैं और प्रायः दलहन व तिलहन की फ़सलों के साथ मिश्रित कर इसकी फ़सल उगाते हैं. खेती के बाद फ़सल के जो अवशिष्ट पदार्थ होते हैं, जैसे कि भूसा आदि, वे मवेशियों के लिए चारे के रूप में इस्तेमाल हो जाते हैं और इस तरह फ़सल चक्र का महत्वपूर्ण हिस्सा बन जाते हैं.

मिश्रित कृषि व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि इसके साथ सुरक्षा की अवधारणा भी जुड़ी होती थी. कई मायनों में यह ग्रामीण परिवारों की आहार सुरक्षा को सुनिश्चित करती थी. अगर एक फ़सल किसी कारण से बर्बाद भी हो जाती थी तो लोग दूसरी फ़सलों के सहारे जी लेते थे. मिश्रित खेती को अपनाने वाले सभी किसान इस बात को भलीभांति जानते थे कि इस तरह की खेती में प्रत्येक फ़सल दूसरी फ़सलों के लिए आवश्यक उपजाऊ मिट्टी और पोषकीय ज़रूरतों को पूरी करती है. आम लोगों का विज्ञान व्यवहार में किस तरह काम करता है, यह इस बात की बेहतर मिसाल है. उत्तराखंड के एक प्रमुख किसान आंदोलन, बीज बचाओ आंदोलन के विजय जरधारी कहते हैं कि 2009 में जब सूखा पड़ा था तो मिलेट्स के सहारे ही उनके गांव की स्थिति को क़ाबू में रखा जा सका था.

वर्षों तक मिलेट्स आधुनिक युग के वैश्विक नज़रिए का कोपभाजन बनते रहे हैं. तकनीकी उन्नति के साथ ही कृषि उत्पादन के प्रति नज़रिया व्यवसायिक हो गया. मिलेट्स की उपेक्षा न सिर्फ़ कृषि से जुड़ी योजनाओं में होती रही, बल्कि लोगों के खाद्यान्न उपभोग की प्रवृत्ति में भी इसके प्रति तिरस्कार का ही भाव दिखा. सत्तर के दशक में हरित क्रांति की शुरुआत के साथ ही मिलेट्स की खेती के प्रति उपेक्षा का दौर भी शुरू हो गया. लोगों के मन में यह बात गहराई से पैठ गई कि भूख का निदान बस दो फ़सलों के उत्पादन को बढ़ाकर किया जा सकता है. एक तो गेहूं और दूसरा चावल. उन्नत बीज, मशीनीकृत सिंचाई और उर्वरक का इस्तेमाल खेती के कार्य में बढ़ा. ज्वार व बाजरा जैसे मोटे अनाजों की खेती उपेक्षा के चलते बिल्कुल हाशिए पर पहुंच गई. नवीं और दसवीं पंचवर्षीय योजनाओं में खाद्यान्न उत्पादन में विभिन्न अनाजों की हिस्सेदारी कितनी है, अगर इस आंकड़े पर आप ग़ौर करें तो पाएंगे कि कुल खाद्यान्न उत्पादन में जहां चावल की हिस्सेदारी 42 प्रतिशत और गेहूं की 35 प्रतिशत है, वहीं मोटे अनाज की हिस्सेदारी महज़ 14 प्रतिशत. वर्षों तक न तो सरकार की जन वितरण प्रणाली में इन उच्च पौष्टिकता वाले अनाज के लिए कोई जगह थी और न ही बाज़ार में. वास्तव में 1966 से लेकर 2006 तक भारत में 44 प्रतिशत ज़मीन, जिस पर कभी मोटे अनाजों की खेती होती थी, उस पर दूसरे अनाज उगाए जाने लगे.

अब इसे अजीब बात ही कहेंगे कि व्यवसायिक नज़रिए से यह स्वीकार कर लिया गया है कि मिलेट्स बेहद स्वस्थ व पौष्टिक आहार हैं और शहरी उपभोक्ताओं को इन्हें ऊंची क़ीमत पर बेचा जा सकता है. वर्षों तक उपेक्षित रहने के बाद मिलेट्स को कृषि अनुसंधान संस्थानों में जगह मिल पा रही है और बड़ी निजी कंपनियां भी इसे अपने एजेंडे में शामिल कर रही हैं. यह सच है कि वर्षों तक यह खाद्यान्न हमारी उपेक्षा का शिकार रहा और भोजन, कृषि और सरकारी योजनाओं तक में हाशिए पर रहा. लेकिन चिकित्सक और पोषाहार विशेषज्ञों द्वारा मधुमेह के रोगियों के के लिए इस आहार को सही ठहराए जाने के बाद से बड़ा बदलाव आया है. आज स्थिति यह है कि हर बड़े शहरों में काफी संख्या में पौष्टिक आहार की आधुनिक दुकानें खोली जा रही हैं, वहां मिलेट्स और उन पर आधारित हेल्थफूड उत्पाद बेचे जा रहे हैं. शहरी उपभोक्ताओं के बीच ये उत्पाद खूब लोकप्रिय भी हैं. इतने कि मिलेट्स के लिए अब नई पदावली इस्तेमाल की जा रही है- न्यूट्रास्यूटिकल्स.

लेकिन इतना सब कुछ हुआ भी तो उसमें क़ीमत ज़्यादा महत्वपूर्ण है और इस क़ीमत के साथ भी दो बातें जुड़ी हैं. पहली और सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि ज्वार व बाजरा जैसे मोटे अनाजों को ग़रीबों का भोजन माना जाता है और इसे जिस क़ीमत पर बेचा जाता है, उसे ख़रीद पाना सिर्फ़ अमीरों के बूते की ही बात है. दूसरी बात यह कि बड़ी निजी कंपनियां, जिन्हें मिलेट्स के उत्पादन में भारी मुनाफ़ा नज़र आ रहा है, आज कई-कई एकड़ ज़मीन पर मोटा अनाज कही जाने वाली किसी एक फ़सल की खेती कर रही हैं. ऐसा वे मूलतः सीलबंद अन्न और उत्पाद के रूप में इसे बाज़ार में उतारने के उद्देश्य से कर रही हैं. साथ ही साथ बायोडीज़ल के उत्पादन में भी मिलेट्स के इस्तेमाल की संभावना को ध्यान में रखा जा रहा है. देश और विदेशों में भी इस पर शोध किए जा रहे हैं. हक़ीक़त यह है कि कुछ प्रचलित मिलेट्स की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए अनुवांशिक सुधार पर भी शोध किए जा रहे हैं. कह सकते हैं कि मिलेट्स खाद्यान्न से ईंधन अन्न का स्थान लेने जा रहे हैं.

मिलेट्स की खेती दरअसल कृषि जैव विविध परिस्थितिकी को दर्शाता है. इसे नेचुरल फार्मिंग के साथ गिव एंड टेक की स्वाभाविक प्रक्रिया मान सकते हैं. ऐसा तभी होता है, जब एक फ़सलीय खेती न की जा रही हो. जहां तक मिलेट्स की खेती की बात है तो इसे नज़रअंदाज़ ही किया जा रहा है. ऐसे में एक ओर तो मिलेट्स को बाज़ार में अहम स्थान मिल रहा है, वहीं जो वास्तविक किसान हैं, वे इसके फ़ायदे से वंचित हो रहे हैं. सारा फ़ायदा कुछ निजी कंपनियों के हाथों में सिमट रहा है. किसान एक बार फिर बीज़ और दूसरी चीज़ों के लिए बाज़ार पर आश्रित रहने को विवश हैं. वक़्त की मांग है कि हम मिलेट्स के साथ फिर से जुड़ें...हम न सिर्फ़ इसकी खेती को प्रोत्साहित करें, बल्कि हमारे खाने की प्लेटों में भी इसे प्रमुख स्थान मिले.

लेखिका कल्पवृक्ष एनवायरमेंटल एक्शन ग्रुप की सदस्या हैं.

feedback@chauthiduniya.com